

# सार्वभौम विद्या योग

विशेष लेख :- श्री योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज



योग अध्यात्म विद्या है, मानव मात्र इसका अधिकारी है। यह एक दूसरी बात है कि कोई व्यक्ति योग की परिभाषा न समझकर इसको अपने मन से साम्प्रदायिकता का स्थान देता रहे। साम्प्रदायिक लोग 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' के नियमानुसार अपने मनोनीत नियमों का संकलन करके अपने सम्प्रदायों को चलाते हैं। उनके सभी नियम सभी को प्रिय नहीं होते। हमारी योग विद्या एक इस प्रकार की योग विद्या है जिसमें ज्ञान और विज्ञान के स्वरूपों को समझाकर मनुष्यों को पूर्णता की ओर ले जाया गया है। भगवान पतंजलि देव ने 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' कह करके अपने पातंजलि योग-दर्शन में योग की परिभाषा बताई है। चित्त-वृत्ति निरोध का अर्थ है— चित्त की वृत्तियों का निरन्तर शमन अर्थात् सीमा तक पहुँची हुई चित्त वृत्तियों का बिल्कुल रुक जाना। चित्त वृत्तियाँ त्रिगुणात्मिका होती हैं। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीनों प्रकृति सम्भव गुण हैं। ये तीनों गुण ही योगी के चित्त को मलिन रखा करते हैं। जिस समय चित्त सतोगुण प्रधान रहता है उस समय रजोगुण और तमोगुण उसके अनुगामी रहा करते हैं। ऐसा सतोगुण प्रधान चित्त आत्म स्वरूप अध्यात्म ऐश्वर्य में प्रेम करने वाला होता है और इसके विपरीत रज और तम प्रधान चित्त अवैराग्य, अनैश्वर्य एवं अन्धकार आलस्य की ओर बढ़ाने वाला होता है। योगी अपने चित्त की त्रिगुण प्रवृत्तियों को हटाकर चित्त वृत्तियों का निरोध करता है, एवं अपने आप को केवली भाव की ओर ले जाता है। केवल्य लाभ करना ही योगियों का परमलक्ष्य है। यह लक्ष्य भूमंडल पर जन्म लेने वाले हर मानव का हो सकता है। इसका किसी के मजहब या सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं। आवश्यकता तो इसी बात की है कि साधक मननशील मनुष्य हो। यह विचारने की आवश्यकता नहीं कि उस का जन्म कहाँ

हुआ है। वह किन मन्तव्यों को मानने वाला है? भले ही वह यहूदी हो, फारसी हो, हिन्दू, मुसलमान या ईसाई हो आवश्यकता इस बात की है कि वह मननशील मानव हो। मननशील मानव योग का अधिकारी है। यदि उसके मन में योग की सच्ची जिज्ञासा पैदा हो गई है तो वह योगोपदृष्टा योग्य सच्चे आचार्य गुरु की शरण लेकर इस विद्या में प्रवेश कर सकता है तथा प्रवेश कर जाने के बाद दृढ़तर अभ्यास में लगे रहने वाला व्यक्ति योग की पराकाष्ठा को अवश्य ही पा जाता है। अखिलात्मा योगयोगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी श्रीमद्भगवद् गीता के छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

**ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।**

**युक्तः इत्युच्यते योगी सम लोष्टाश्मकांचनः॥**

**गीता 6:8**

जिसका अन्तःकरण ज्ञान विज्ञान से तृप्त है, जिसकी स्थिति अचर, स्थिर विकार रहित है। जिसकी दृष्टि में लोहा सोना-मिट्टी-पत्थर समान रूप से ही दिखाई देते हों किन्तु यह स्थिति प्राप्त उसी को हो सकती हैं जिसने योग का क्रमशः अभ्यास किया हो। योग की वर्णाक्षरी मन की एकाग्रता से आरम्भ होती है। मन सब शक्तियों का भंडार है। इन्द्रियां उसको अपने-अपने विभिन्न विषयों में प्रतिक्षण प्रेरित करती रहती हैं अतः वह इन्द्रियों के विषय रूप रस गंध आदि में भटकता रहता है। योगी का सबसे पहला लक्ष्य है कि रूप रस गंधादि में भटकने वाले अपने मन को प्रत्याहार के द्वारा लौटा-लौटा कर धारणा के द्वारा एकाग्र करें। किसी एक लक्ष्य स्थान में चित्त को इकट्ठा करना ही धारणा कहलाती है। यह योगी की पहली वर्णाक्षरी, है जिसका अध्ययन करने वाला साधक धारणा ध्यान समाधि

का अभ्यास करता हुआ संयम तक पहुंच जाता है एवं संयमित चित्त वाला योगी ही ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा हो सकता है। ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा के अर्थ को हर व्यक्ति सम्भवतः नहीं समझता होगा। अतः थोड़ा सा स्पष्ट कर देना आवश्यक है। ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा का अर्थ है प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझ कर उस पर पूर्णाधिकार प्राप्त करना। जैसे जल में न डूबना, अग्नि से न जलाया जाना, पाताल प्रवेश करना, आकाश गमन करना, ये सभी कार्य प्रकृति के नियमों को समझकर उस पर विजय प्राप्त कर लेने वाली बात है। जो साधक अपनी साधना के बल से प्रकृति के इस प्रकार के सभी नियमों को समझकर उन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है वह ज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने संयम को उत्कृष्ट बढ़ाकर आत्मसाक्षात्कार कर लेता है एवं प्रातिभश्रवण वेदना आदर्श आदि आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है वह विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। ज्यों-ज्यों साधक आत्म साक्षात्कार के निकट पहुंचता है त्यों-त्यों उसके मन में अपने आप ही प्रातिभ ज्ञान का उदय हो जाया करता है। जिस प्रकार से प्रातः कालीन ऊषा काल में हर व्यक्ति को धुंधले-धुंधले प्रकाश में सब मकान आदि दिखलाई देने लगते हैं इसी प्रकार से योगी की बुद्धि में सभी सूक्ष्म भाव शुद्ध सत्य के रूप में आभासित होने लग जाते हैं। यही उसका प्रातिभ ज्ञान है। प्रातिभ ज्ञान के साथ-साथ दूर-दूर की बातें सुनना, दूर-दूर के देशान्तरों को देखना, दूर-दूर की वस्तुओं का स्पर्श करना आदि-आदि शक्तियाँ भी योगी के अन्दर स्वाभाविक रूप से उदित हो जाती हैं। इन सब शक्तियों के उदय हो जाने के बाद योगी का मन अपने आप ही आत्मलीन रहने लगता है। वह कूटस्थ हो जाता है। उसकी बुद्धि वृत्ति आत्माकार बनी रहने लगती है। अतः किसी भी विकार का उसके मन में उदय नहीं होता। इस प्रकार की स्थिति में स्थिर रहने वाले योगी की दृष्टि में लोहा-सोना पत्थर सब समभाव से रहने लगते हैं। वह

वासना तृष्णा के जाल से बिल्कुल-बिल्कुल दूर हो जाता है। प्राणि मात्र को अपना आत्म समझता है, एवं अपने आप को भी प्राणिमात्र के अन्दर आत्मत्वेन देखता है। यही उसकी पराकाष्ठा को प्राप्त हुई योग स्थिति है। उसकी दृष्टि में वर्ण भेद और जाति भेद सब मिट जाते हैं। अतः योग विद्या ही एक इस प्रकार की विद्या है कि जिसको सार्वभौम विद्या कहा जा सकता है। क्योंकि पृथ्वी पर जन्म लेने वाले सभी व्यक्ति अपने-अपने अधिकार भेद से इसके अधिकारी हैं। हमारे पूर्वज महापुरुषों ने अधिकार भेद को अवश्य माना है। अधिकार भेद का अर्थ किसी जाति पांति से सम्बन्ध नहीं रखता प्रत्युत योग्यता से सम्बन्ध रखता है। जैसे पहली कक्षा में पढ़ने वाला विद्यार्थी उसे उत्तीर्ण करके ही दूसरी कक्षा का अधिकारी बनता है। न कि एम.ए. आचार्य आदि का। हाँ शनैः शनैः पढ़ता-पढ़ता पहली दूसरी-तीसरी आदि कक्षाओं को क्रमशः उत्तीर्ण करता हुआ शनैः शनैः वह एम.ए. व आचार्य पद तक पहुंच ही जायेगा और कुछ समय के बाद क्रमशः अध्ययन करता हुआ वह उच्च कोटि का विद्वान कहलाने लगेगा। इसी प्रकार से योग विद्या का विद्यार्थी भी शनैः शनैः क्रमशः अध्ययन करता हुआ अपने परम लक्ष्य तक अवश्य ही पहुंच जावेगा। किन्तु यह देखना आवश्यक होगा कि कौन व्यक्ति किस भूमिका का है। हठयोग, राजयोग, मन्त्रयोग एवं लययोगे किस रास्ते पर चलने से किसका जल्दी से जल्दी ऊँचा उत्थान हो सकता है, इस बात को उसके शिक्षक समझेंगे कि वह अपने छात्र को जिस मार्ग से चलाना चाहेंगे, चलायेंगे एवं उसको बढ़ावेंगे। यह विद्या सभी को सामान्य रूप से प्राप्त करने योग्य है। योग विद्या ही एक इस प्रकार की विद्या है जिसको जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है। इसको पाकर ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाया करता है। यह विद्या हमारे पूर्वजों की अमर देन है।

